5

गाँधी युग—असहयोग आन्दोलन

[NON-CO-OPERATION MOVEMENT]

"अंग्रेजी सरकार शैतान है, जिसके साथ सहयोग सम्भव नहीं, बिना स्वराज्य के पंजाब तथा खिलाफत की भूलों की पुनरावृत्ति को नहीं रोका जा सकता। अंग्रेज सरकार को अपनी भूलों पर कोई दुःख नहीं है, अतः हम कैसे स्वीकार कर सकते हैं कि नवीन व्यवस्थापिकाएँ हमारे स्वराज्य का मार्ग प्रशस्त करेंगी। स्वराज्य की प्राप्ति के लिये हमारे द्वारा प्रगतिशील अहिंसात्मक असहयोग नीति अपनायी जानी चाहिए।"

—सन् 1920 के कलकत्ता काँग्रेस अधिवेशन में महात्मा गाँधी द्वारा रखे गये प्रस्ताव का एक अंश।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के सन् 1920 से 1947 तक के काल को **'गाँधी-युग'** के नाम से जाना जाता है। इतिहास साक्षी है कि मनुष्य ने सदैव अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाई है। रूस में सन् 1917 में हुई क्रान्ति ने विश्व में विभिन्न स्थानों पर हो रहे अत्याचारों व शोषक प्रवृत्तियों के विरुद्ध संघर्षरत जनसमूहों की आवाज को और भी सशक्त बनाया। भारतीय जनता ने भी इससे प्रेरित होकर उन पर हो रहे अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाई जिसमें गाँधी-युग के पूर्व सन् 1909 से 1919 तक के काल का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में विशेष महत्वपूर्ण स्थान रहा। इस काल में भारतीय राजनीति में कुछ ऐसी घटनाएँ घटित हुई जिन्होंने असहयोग आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार कर दी। इनमें होमरूल या गृहशासन आन्दोलन, सन् 1916 का काँग्रेस लीग समझौता और 20 अगस्त, 1917 की मॉण्टेग्यू घोषणा प्रमुख हैं।

होमरूल या गृह-शासन आन्दोलन
(HOME RULE MOVEMENT)

उग्रवादी आन्दोलन को कुचलने के लिये ब्रिटिश सरकार ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ दमनचक्र चलाया। सन् 1908 में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक को 6 वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। सन् 1914 में तिलक को रिहा किया गया। उस समय काँग्रेस में उदारवादियों का प्रभुत्व था। अतः तिलक जैसे उग्रवादी नेता को कार्य करने के लिये किसी संगठन की आवश्यकता थी। उसी समय प्रथम विश्व-युद्ध के प्रारम्भ हो जाने से सरकार संकट में थी अतः उग्रवादियों ने स्वायत्त शासन प्राप्त करने के लिये यह उपयुक्त समय समझा। इसलिए तिलक ने अपने उग्रवादी साथियों को पुनःसंगठित किया तथा आयरलैण्ड से प्रेरणा लेकर इस दिशा में प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया। तत्पश्चात् अप्रैल 1916 में उन्होंने पूना में महाराष्ट्र होमरूल लीग की स्थापना की। श्रीमती एनीबेसेण्ट ने सितम्बर, 1916 में मद्रास (चेन्नई) में अखिल भारतीय होमरूल लीग की स्थापना की। इन दोनों संगठनों ने परस्पर सहयोग से कार्य किया तथा श्रीमती एनीबेसेण्ट के प्रयासों से तिलक को पुनः काँग्रेस में सम्मिलित कर लिया गया। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप काँग्रेस में पुनः एकता स्थापित हो गई। इसी समय काँग्रेस और मुस्लिम लीग में भी सहयोग के लिये समझौता हुआ। यह सब देखते हुए होमरूल (गृह आन्दोलन) के समर्थकों ने कहा कि केवल स्वशासित भारत ही अंग्रेजी साम्राज्य को युद्ध में वास्तविक सहायता प्रदान कर सकता है, इसलिए भारत को होमरूल (गृह-शासन) प्रदान करना ब्रिटेन के हित में ही है। क्योंकि गृह-शासन आन्दोलन को पूर्णतया वैधानिक आन्दोलन का स्वरूप प्रदान किया गया था।

होमरूल (गृह-शासन) आन्दोलन का संचालन बहुत अधिक उत्साहपूर्वक किया गया। यह आन्दोलन धीरे-धीरे गति पकड़ने लगा तथा सम्पूर्ण देश में फैल गया। **श्रीमती एनीबेसेण्ट** ने अपने **न्यू इण्डिया** और साप्ताहिक **कॉमनवीक** तथा तिलक ने अपने दैनिक **केसरी** और साप्ताहिक **मराठा** के माध्यम से होमरूल (गृह-शासन) आन्दोलन का जोरदार प्रचार किया। इस कारण सन् 1917 के मध्य तो यह आन्दोलन चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। इससे ब्रिटिश सरकार घबरा उठी और उसने लोकमान्य तिलक के पंजाब और दिल्ली प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया तथा श्रीमती एनीबेसेण्ट और उसके सहयोगियों को नजरबन्द कर दिया। सरकार के दमन चक्र से सम्पूर्ण देश में उत्तेजना फैल गयी। सरकार के विरुद्ध रोष प्रकट किया जाने लगा। इसके लिये भारतमन्त्री मि. चेम्बरलेन को दोषी ठहराया गया। तब इसी समय लार्ड मॉण्टेग्यू घोषणा जारी की गई जिस के कारण यह आन्दोलन समाप्त हो गया।

20 **अगस्त, 1917 की मॉण्टेग्यू घोषणा**—होमरूल आन्दोलन, काँग्रेस-लीग समझौता, काँग्रेस में एकता होना व उग्रवादियों का प्रभुत्व स्थापित होना और मेसोपोटामिया आयोग की रिपोर्ट ने ब्रिटिश सरकार को यह सोचने के लिए विवश कर दिया कि उनके द्वारा भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया जाए। ऐसी स्थिति में सन् 1917 में मि. चेम्बरलेन के स्थान पर मि. मॉण्टेग्यू को भारतमन्त्री नियुक्त किया गया। 20 अगस्त, 1920 को ब्रिटिश संसद में भारतमन्त्री लॉर्ड मॉण्टेग्यू ने ऐतिहासिक घोषणा की इस घोषणा में निम्नलिखित मुख्य बातें कहीं गयी थीं :

(1) सम्राट सरकार की नीति जिससे भारत सरकार पूर्णतः सहमत है, यह है कि भारतीय शासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयों का सम्पर्क उत्तरोत्तर बढ़े और उत्तरदायी शासन प्रणाली का धीरे-धीरे विकास हो जिससे अधिकाधिक प्रगति करते हुए शासन प्रणाली भारत में स्थापित हो और वह ब्रिटिश साम्राज्य के एक अंग के रूप में रहे।

(2) क्रमिक विकास द्वारा ही उत्तरदायी शासन की स्थापना सम्भव हो।

(3) ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार उत्तरदायी शासन की दिशा में प्रगति के प्रत्येक चरण का निर्णय कर सकती है जिन पर भारतीय जनता की समृद्धि और भारत का उत्तरदायित्व है।

(4) भारतीय व्यक्तियों द्वारा दिये गये सहयोग और उनके द्वारा दिये गये उत्तरदायित्व के परिचय के आधार पर ही इस सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार द्वारा निर्णय लिया जायेगा।

इस घोषणा के पश्चात् भारतमन्त्री ने भारत आकर तत्कालीन गवर्नर जनरल के साथ देश का भ्रमण किया और भारतीय शासन के सुधार के लिये एक योजना का प्रारूप और तैयार किया। यही प्रारूप '**मॉण्टफोर्ड प्रतिवेदन**' के नाम से जाना जाता है। यही प्रतिवेदन सन् 1919 के भारतीय शासन के निर्माण का आधार बना।

अगस्त, 1917 की मॉण्टेग्यू घोषणा की भारत में मिश्रित प्रतिक्रिया हुई। उदारवादी इस घोषणा की कार्यरूप में परिणति को उचित एवं आवश्यक मानते थे जबकि उग्रवादी इस घोषणा की कुछ कमियों के कारण उसे भारतीय मर्यादा के विरुद्ध मानते थे। कुछ भी हो, अनेक कमियों के होते हुए भी इस घोषणा ने भारतीय शासन-सुधार की दिशा में एक नये युग का प्रारम्भ किया। **श्रीराम शर्मा** के शब्दों में, "**घोषणा-पत्र भारत के संवैधानिक इतिहास में एक अध्याय बन्द करता है और दूसरा अध्याय प्रारम्भ करता है।**"[1]

इस प्रकार होमरूल (गृह-शासन) आन्दोलन के परिणाम स्वरूप की गयी मॉण्टेग्यू घोषणा ने ही राष्ट्रीय आन्दोलन में असहयोग आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार की, जिसके आधार पर गाँधीजी द्वारा असहयोग आन्दोलन का सफलतापूर्वक संचालन किया गया।

महात्मा गाँधी का भारतीय राजनीति में प्रवेश एवं असहयोग आन्दोलन
(MAHATAMA GANDHI'S ENTRANCE IN INDIAN POLITICS AND NON-COOPERATION MOVEMENT)

प्रथम विश्व-युद्ध के समाप्त होने पर भारतीय राजनीति में एक नये युग का आरम्भ हुआ। इस युग को 'गाँधी युग' कहा जाता है। महात्मा गाँधी अपने युग के महान् नेता थे। वे जिस समय भारतीय राजनीति में आये, उस समय वे भारतीय शासन के दृष्टिकोण व कमियों के प्रति सतर्क होते हुए भी ब्रिटिश सरकार की न्यायप्रियता में विश्वास रखते थे और ब्रिटिश शासन के भक्त तथा सहयोगी थे। वे अपने राजनीतिक गुरु श्री

1 Sri Ram Sharma : *A Constitutional History of India.* p. 154

गोखले की भाँति अंग्रेजों को एक न्यायप्रिय जाति मानते थे। इसीलिए उन्होंने प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान भारतीय जनता से ब्रिटिश सरकार को धन-जन की सहायता की अपील करते हुए कहा था कि "**सामाज्य की भागीदारी हमारा लक्ष्य है। हमें सामर्थ्य के अनुसार कष्ट उठाना चाहिए और साम्राज्य की रक्षा में अपनी जान तक दे देनी चाहिए। यदि साम्राज्य नष्ट हो जायेगा तो उसके साथ ही हमारी अभिलाषाएँ भी नष्ट हो जायेंगी। अतः साम्राज्य की रक्षा के कार्य में सहयोग देना स्वराज्य प्राप्ति का सरलतम और सीधा मार्ग है।**" इस तरह गाँधीजी की अपील पर भारतीय जनता ने ब्रिटिश साम्राज्य को भरपूर सहयोग प्रदान किया। इसीके प्रतिफलस्वरूप ब्रिटिश शासन ने गाँधीजी को '**केसरी हिन्द**' की उपाधि से सम्मानित और उन्हें एक स्वर्ण पदक प्रदान किया। लेकिन युद्ध समाप्त होने के बाद एक वर्ष के भीतर ही कुछ ऐसी घटनायें घटित हुईं कि गाँधीजी सहित भारतीय जनता को यह अनुभव होने लगा कि प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान भारतीयों के प्रति अपनायी गई दया की नीति अंग्रेजों की एक कूटनीति थी। इसीलिये गाँधीजी का मन बहुत क्षुब्ध हुआ। उन्होंने ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग की नीति छोड़कर असहयोग का मार्ग अपनाना उचित समझा। सहयोगी गाँधी, असहयोगी गाँधी बन गये। उनके विचारों में जमीन-आसमान का अन्तर हो गया। एक वर्ष बीतते-बीतते ब्रिटिश साम्राज्य का प्रशंसक उसका सबसे बड़ा विनाशक बन गया। सन् 1920 में गाँधीजी राष्ट्रीय आन्दोलन के सेनापति के रूप में भारतीय राजनीति के सामने आये। इससे पूर्व सन् 1893 में गाँधीजी द्वारा दक्षिण अफ्रीका सरकार की रंगभेद नीति के विरोध में लम्बे समय तक अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन चलाया गया था, जिसके फलस्वरूप अफ्रीका की सरकार ने भारतीयों के विरुद्ध बने हुए अपमानजनक कानूनों को वापस ले लिया और भारतीयों पर से कई प्रकार के प्रतिबन्ध हटा दिये गये। गाँधीजी को इस महान सफलता के फलस्वरूप ख्याति प्राप्त हुई। दक्षिण अफ्रीका में ख्याति प्राप्त कर चुकने के बाद जनवरी सन् 1915 में गाँधीजी भारत आये। भारतीय जनता उनसे प्रभावित थी। उस समय तिलक की अस्वस्थता, गोखले का निधन तथा अन्य नेताओं के उत्साह में कमी आ जाने के कारण भारतीय राजनीति की बागडोर स्वतः गाँधीजी के हाथों में आ गयी और भारतीय राजनीति में प्रवेश से पूर्व गाँधीजी ने चम्पारन सत्याग्रह, खेड़ा में आन्दोलन और अहमदाबाद में आमरण अनशन का सफल प्रयोग किया।

इस प्रकार गाँधीजी ने सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह के आधार पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये विभिन्न प्रकार के आन्दोलन चलाये। उन्होंने सम्पूर्ण देश में गजनीतिक चेतना जाग्रत की और राष्ट्रीय आन्दोलन को एक जन आन्दोलन में परिवर्तित कर दिया। उन्होंने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सर्वप्रथम सन् 1920 में सहयोग आन्दोलन चलाने का निर्णय लिया।

असहयोग आन्दोलन के प्रमुख कारण या पृष्ठभूमि
(BACKGROUND OR MAIN CAUSES OF NON-COOPERATION MOVEMENT)

जिन घटनाओं और कारणों ने असहयोग आन्दोलन को जन्म दिया उनमें से कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :

(1) **युद्धोत्तरकालीन भारत में घोर निराशा और असन्तोष**—स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्र और आत्मनिर्णय के अधिकार की रक्षा के नाम पर लड़े गये प्रथम विश्व-युद्ध के समय भारतीय जनता से धन-जन की सहायता प्राप्त करने के लिये ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को यह आश्वासन दिया था कि भारत में शीघ्रातिशीघ्र उत्तरदायी शासन की स्थापना की जायेगी। लेकिन युद्ध की समाप्ति के बाद ब्रिटिश सरकार ने भारत को पूर्ण स्वराज्य न देकर सन् 1919 में मात्र भारतीय शासन अधिनियम पारित कर दिया जो भारतीय जनता की आशाओं के विपरीत था। इस अधिनियम से कोई भारतीय सन्तुष्ट नहीं था। इस अधिनियम द्वारा प्रान्तों में तो आंशिक स्वशासन लागू किया गया था परन्तु केन्द्रीय सरकार को सर्वथा निरंकुश रखा गया था। इसीलिए इस अधिनियम के सम्बन्ध में तिलक ने कहा था कि "**हमें बिना सूर्य के प्रभात दिया गया है।**" इतना ही नहीं, सरकार द्वारा युद्ध में व्यय की गई अपार धनराशि जो लगभग डेढ़ अरब पौण्ड से भी अधिक थी उसे भारतीय जनता से करारोपण करके जबरदस्ती वसूल किया गया दूसरी ओर आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों में असाधारण वृद्धि करके भी धन की वसूली की गई। इन स्थितियों के कारण जनसाधारण को भारी आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। कहीं-कहीं भुखमरी की स्थिति निर्मित हो गयी। किसानों और मजदूरों की दशा और भी दयनीय हो गयी और ऐसी ही स्थिति में अकाल तथा महामारी ने उनकी दशा को और अधिक शोचनीय बना दिया। इसी

के साथ ब्रिटिश सरकार ने प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान सेना की भर्ती तथा युद्ध व्यय के रूप में धन की वसूली करने के लिए तथा सैनिकों की छँटनी के लिये जो उपाय काम में लिये वे अन्यायपूर्ण थे जिससे जनता के मन में असन्तोष की भावना और अधिक बलवती होने लगी। इस प्रकार की घटनाओं ने गाँधीजी को असहयोग आन्दोलन की दिशा में सोचने के लिये विवश कर दिया।

(2) **रौलेट एक्ट**—प्रथम विश्व-युद्ध के बाद भी ब्रिटिश सरकार क्रान्तिकारियों पर नियन्त्रण के नाम पर अपना दमन-चक्र निरन्तर बनाए रखना चाहती थी, जबकि युद्ध की समाप्ति के बाद इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। लेकिन अंग्रेज सरकार क्रान्तिकारियों के कृत्यों की जाँच करने और उनका दमन करके भारतीयों की राष्ट्रीय भावना कुचलना चाहती थी। इसके लिये ब्रिटिश सरकार ने सन् 1917 में **सर सिडनी रौलेट** की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इस समिति को भारत में क्रान्तिकारियों व आतंकवादियों की गतिविधियों की जाँच करने व उनके द्वारा चलाए जा रहे आन्दोलनों को दबाने के लिये कैसे कानून बनाये जायें, विषयक रिपोर्ट देने के लिये कहा गया। समिति ने लगभग चार महीने जाँच-पड़ताल की और अप्रैल सन् 1918 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में कहा गया कि भारत के वर्तमान फौजदारी कानून क्रान्तिकारियों और उनकी गतिविधियों को कुचलने के लिये अपर्याप्त हैं। समिति ने सलाह दी कि एक ऐसा कानून बनाया जाये जो युद्ध समाप्त होने पर भारतीय सुरक्षा अधिनियम के विकल्प के रूप में उपयोग किया जा सके तथा वर्तमान फौजदारी कानून में संशोधन किया जाय जिससे किसी भी आन्दोलन को सरलता से कुचला जा सके। अतः भारत के सभी वर्गों ने इसका विरोध किया लेकिन इस विरोध के बावजूद सरकार ने दो विधेयक तैयार कर उन्हें पारित कर दिया जिसे **रौलेट एक्ट** के नाम से जाना जाता है। इस अधिनियम के अनुसार किसी भी संदिग्ध व्यक्ति को गिरफ्तार कर उसे अनिश्चित समय तक नजरबन्द रखा जा सकता था। 18 मार्च, 1919 को रौलेट एक्ट पारित हुआ। **पंडित मोतीलाल नेहरू** के शब्दों में **"अधिनियम ने अपील, वकील और दलील की व्यवस्था का अन्त कर दिया।"** इसीलिये भारतीयों द्वारा इसे काला कानून कहा गया और इसका तीव्र विरोध किया गया देशव्यापी हड़तालें हुईं। पुलिस द्वारा किये गये गोलीचालन में अनेक लोग मारे गये। अप्रैल, 1919 को दिल्ली आते हुए गाँधीजी को बन्दी बना लिया गया। इन सभी घटनाओं ने देश के वातावरण को उग्र बना दिया तथा गाँधीजी को असहयोग आन्दोलन की दिशा में आगे बढ़ने के लिये बाध्य कर दिया।

(3) **जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड**—रौलेट एक्ट के विरोध में भारत के अन्य प्रान्तों के समान पंजाब में भी हड़तालें और प्रदर्शन हुए। इस समय पंजाब के गवर्नर मायकेल ओ डयर (Michael O. Dwyer) थे। वह रूढ़िवादी और दमनप्रिय व्यक्ति था। निर्णय लिया कि वह इन आन्दोलनों को कुचल देगा। इसलिए काँग्रेसी नेताओं के पंजाब प्रवेश कर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और दो महत्वपूर्ण नेताओं डॉ. किचलू और डॉ. सत्यपाल को बन्दी बना लिया गया। इससे देश-प्रेम की आग और भड़क उठी। इसके विरोध में पंजाब राज्य के एक नगर अमृतसर में जनता ने शान्तिपूर्ण जुलूस निकाला। उस जुलूस पर पुलिस द्वारा गोलियाँ चलायी गईं जिससे 10 स्वयंसेवकों की मृत्यु हो गई, इससे भीड़ उग्र हो गई और उसने कुछ अंग्रेजों की हत्या कर दी और कई अंग्रेजों को बहुत मार लगायी। परिणामस्वरूप अमृतसर सेना के सुपुर्द कर दिया गया। अंग्रेजों द्वारा नया सेनाध्यक्ष ब्रिगेडियर डायर को नियुक्त किया गया। उसने सम्पूर्ण नगर में अपना आतंक जमा लिया और सार्वजनिक सभाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया, जिसकी जनता को कोई जानकारी नहीं थी।

अतः रौलेट एक्ट और प्रशासन की दमनात्मक कार्यवाही का विरोध करने के लिए 13 अप्रैल, सन् 1919 को वैशाखी के पुनीत पर्व पर अमृतसर के जलियाँवाला बाग में पंजाब राज्य की जनता शान्तिपूर्ण सभा का आयोजन कर काले कानूनों और अन्धे दमनचक्र का विरोध करने के लिये एकत्रित हुई। इस जनसमूह में स्त्री-पुरुष, बालक एवं वृद्ध सभी थे। यह बाग चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवारों से घिरा था, उसमें आने जाने के लिये केवल एक सँकरा मार्ग था। उस समय मैदान में 25,000 के लगभग जनता एकत्रित होकर अंग्रेजों के विरुद्ध अपना शान्तिप्रिय विरोध प्रकट कर रही थी। ऐसे ही समय जनरल डायर सेना की एक टुकड़ी के साथ वहाँ आ धमका, उसने जनता को तितर-बितर का आदेश दिये बिना को फायरिंग का आदेश दे दिया। सरकारी आँकड़ों के अनुसार 10 मिनट तक निरन्तर हुए फायरिंग में लगभग 1,650 गोलियाँ चलीं और अन्तिम कारतूस तक बन्दूकें उन निहत्थे व्यक्तियों, मासूम बच्चों और वृद्धों पर चलती रहीं। गोलियाँ विशेषकर उस ओर चलायी गयीं जहाँ से बाहर जाने के लिये बहुत सँकरा मार्ग था। इसलिये जनता शीघ्र ही गोलियों का शिकार हो गयी। इस गोलीकाण्ड में लगभग एक हजार व्यक्ति मारे गये तथा दो हजार लोग घायल हुए। उस समय का दृश्य

बहुत ही हृदय विदारक था, चारों ओर जनता की चीखें सुनायी दे रही थी। जनता चीखते-चिल्लाते वहीं पर मृत्यु की शिकार होती जा रही थी। खून की धारा बह उठी। कई व्यक्ति अपंग हो गये। मरने वालों में अधिकांश बच्चे और बूढ़े व्यक्ति थे। इसके अतिरिक्त घायल व्यक्तियों के लिये न तो कोई दवा का प्रबन्ध किया गया और न ही उनके सम्बन्धियों को उनसे मिलने दिया गया परिणामस्वरूप घायल व्यक्तियों ने वहीं दम तोड़ दिया।

यही नहीं, जनरल डायर ने अमृतसर मे माशंल लॉ लागू कर दिया। इसके अतिरिक्त लाहौर, कसूर, गुजरानवाला, शेखूपुरा और बजीराबाद में भी हिंसा भड़कने के कारण सैनिक शासन घोषित कर दिया गया। सैनिक अधिकारियों द्वारा संगीन अपराधों में 298 व्यक्तियों पर मुकदमे चलाये गये जिनमें से 51 व्यक्तियों को फाँसी और शेष को काले पानी या कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। इतना ही नहीं, जनरल डायर ने अपने शासन-काल में इस प्रकार की यातनाएँ भारतीयों की दीं जिन्हें पहले न कभी देखा गया था और न कभी सुना गया था। सार्वजनिक रूप से बेंत और कोड़े मारना तो एक साधारण-सी बात थी। गाँधीजी ने इन घटनाओं को **पाशविक अत्याचार कहकर संबोधित किया।**

सभ्य संसार के इतिहास की यह सर्वाधिक शर्मनाक घटना थी। यद्यपि शासन ने सभी प्रयत्न किये कि यह समाचार पंजाब से बाहर न जाने पाए परन्तु राष्ट्रवादी समाचार पत्रों और पत्रकारों ने अपनी जान की परवाह न करते हुए इस समाचार को सम्पूर्ण विवरण के साथ प्रकाशित किया। जैसे-जैसे यह खबर पंजाब के बाहर पहुँची सम्पूर्ण देश क्रोध से पागल हो उठा। नवयवुक क्रान्तिकारियों का खून उबलने लगा। लाला लाजपतराय ने सार्वजनिक रूप से इन अत्याचारों की घोर निन्दा की। रबीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी उपाधि नाइटगुड शासन को लौटा दी। पंडित मदनमोहन मालवीय ने केन्द्रीय असेम्बली में एक के बाद एक प्रश्न कर सरकार को विवश कर दिया कि वह घटनाओं का सच्चा विवरण है। इस तरह भारत के कौने-कौने से पंजाब के इन अत्याचारों का घोर विरोध होने लगा। इस नरसंहार ने असहयोग आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त किया।

(4) **हण्टर समिति प्रतिवेदन**—ब्रिटिश शासन ने पंजाब राज्य की घटना से उत्पन्न भारतीय जनता के क्रोध को शान्त करने के लिये एवं गाँधी द्वारा दोषी अंग्रेज अपराधियों के विरुद्ध कार्यवाही की माँग को देखते हुए हण्टर समिति नियुक्त की गई इस समिति में लॉर्ड हण्टर अध्यक्ष तथा कुछ अन्य सदस्य नियुक्त किये गये। इस समिति का उद्देश्य जलियाँवाला बाग घटना से सम्बन्धित आरोपित आपत्तियों की जाँच करना था। लार्ड हण्टर की अध्यक्षता में गठित पाँच-सदस्यीय समिति द्वारा अपनी रिपोर्ट में दोषी अधिकारियों के कुकृत्यों को न्यायोचित ठहराया गया। जनरल डायर को दण्ड देने के स्थान पर उसके काले कारनामों को सही ठहराया गया परन्तु गलत धारणा पर आधारित बताया गया। यही नहीं, ब्रिटिश लार्ड सभा ने जनरल डायर को ब्रिटिश साम्राज्य का शेर कहा तथा उसके समर्थकों ने उसे एक चाँदी की तलवार और 20 हजार पौण्ड की एक थैली भेंट की। यह सब कुछ भारत के घावों पर नमक छिड़कने के समान था। वास्तव में जलियाँवाला बाग का नरसंहार और हण्टर समिति के प्रतिवेदन ने भारतीय जनता के हृदय में एक ऐसे ज्वालामुखी को जन्म दिया जो आगे चलकर असहयोग आन्दोलन के रूप में फूट पड़ा।

(5) **खिलाफत आन्दोलन**—प्रथम विश्व-युद्ध में टर्की मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध जर्मनी के साथ लड़ रहा था। चूँकि भारतीय मुसलमान टर्की के सुल्तान को अपना खलीफा (धर्म गुरु) मानते थे। अतः ब्रिटेन द्वारा टर्की के विरुद्ध युद्ध किया जाना उनकी दृष्टि में उनके धर्म गुरु का विरोध किया जाना था। इसलिये इस युद्ध में भारतीय मुसलमान ब्रिटेन को किसी भी प्रकार का सहयोग नहीं देना चाहते थे। लेकिन ब्रिटिश सरकार ने भारतीय मुसलमानों का सहयोग प्राप्त करने के लिये उन्हें आश्वासन दिया कि युद्ध की समाप्ति पर ब्रिटेन टर्की के प्रति बदले की भावना से व्यवहार नहीं करेगा और न ही वह उसे विभाजित करेगा। इस आश्वासन के फलस्वरूप उन्होंने सरकार की भरपूर सहायता प्रदान की लेकिन युद्ध समाप्ति के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने पराजित टर्की को सेवर्स संधि के अन्तर्गत छिन्न-भिन्न कर दिया और सुल्तान अर्थात् खलीफा को बन्दी बना लिया गया। इस घटना से भारतीय मुसलमान ब्रिटिशन शासन के बहुत अधिक विरुद्ध हो गये। उन्होंने सरकार के विरुद्ध खलीफा की सत्ता पुनर्स्थापित करने के लिये खिलाफत आन्दोलन शुरू कर दिया। गाँधीजी ने खिलाफत आन्दोलन का समर्थन किया। हिन्दू-मुस्लिमों में एकता स्थापित होने के आधार पर असहयोग आन्दोलन करने का निश्चय किया गया।

काँग्रेस की नीति में परिवर्तन और असहयोग आन्दोलन का निश्चय
(CHANGE IN THE POLICY OF CONGRESS AND CERTAINTY OF NON-COOPERATION MOVEMENT)

उपुर्यक्त परिस्थितियों को देखते हुए सितम्बर, 1920 में काँग्रेस का विशेष अधिवेशन कलकत्ता में आयोजित किया गया। इस अधिवेशन में महात्मा गाँधी द्वारा ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध असहयोग आन्दोलन सम्बन्धी प्रस्ताव रखा गया उन्होंने कहा कि, **"ब्रिटिश सरकार शैतान है जिसके साथ सहयोग करना सम्भव नहीं है, बिना स्वराज्य के पंजाब व खिलाफत जैसी गलतियाँ दोहरायी जायेंगी, उन्हें रोका नहीं जा सकेगा। अंग्रेज सरकार को अपनी भूलों पर कोई दुःख नहीं है, अतः हम यह कैसे स्वीकार कर सकते हैं कि नवगठित विधान-परिषदें हमारे स्वराज्य का मार्ग प्रशस्त करेंगी। स्वराज्य प्राप्ति के लिये हमारे द्वारा प्रगतिशील नीति अपनायी जानी चाहिए।"** इस प्रस्ताव को सभापति लाला लाजपत राय सहित अनेक वरिष्ठ नेताओं को छोड़कर सभी ने भारी बहुमत से स्वीकार कर लिया। दिसम्बर, 1920 के नागपुर अधिवेशन में गाँधीजी का प्रस्ताव पुनः भारी बहुमत से स्वीकार कर लिया गया। अधिवेशन में एक अन्य प्रस्ताव पारित करके ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध शान्तिमय और अहिंसात्मक आन्दोलन करने सम्बन्धी समस्त अधिकार गाँधीजी को प्रदान कर दिये गये। इस प्रकार नागपुर अधिवेशन में काँग्रेस ने अपने जीवन के 35 वर्षों में पहली बार ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध इतना सशक्त कदम उठाया। इसी अधिवेशन में उसने ब्रिटिश शासन से पूर्ण छुटकारा पाने की घोषणा की।

असहयोग आन्दोलन का उद्देश्य एवं कार्यक्रम
(AIMS AND PROGRAMMES OF NON-COOPERATION MOVEMENT)

गाँधीजी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन का प्रमुख उद्देश्य ब्रिटिश शासन-तन्त्र को पूरी तरह ध्वस्त करना था इसके लिये ब्रिटिश भारत की समस्त राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाओं के बहिष्कार का निश्चय किया गया। इस आन्दोलन का कार्यक्रम निम्नलिखित था जिसे दो भागों में विभक्त किया गया था।

(अ) **निषेधात्मक या विरोधात्मक पक्ष**—असहयोग आन्दोलन के इस पक्ष में निम्नलिखित कार्यक्रम निर्धारित किये गये थे :

1. सरकारी वैतनिक तथा अवैतनिक पदों और उपाधियों का त्याग।
2. स्थानीय संस्थाओं के मनोनीत सदस्यों द्वारा अपने पदों का त्याग।
3. सन् 1919 के अधिनियम के अन्तर्गत होने वाले चुनावों का बहिष्कार।
4. विदेशी माल का बहिष्कार।
5. सरकारी न्यायालयों का बहिष्कार।
6. सरकारी दरबारों, उत्सवों और स्वागत समारोहों का बहिष्कार।
7. भारतीयों द्वारा मैसोपोटामिया में सैनिक क्लर्क या मजदूर के रूप में कार्य करने से इन्कार।
8. सरकारी और अर्द्ध-सरकारी स्कूल और कालेजों का बहिष्कार।

(ब) **रचनात्मक या सकारात्मक पक्ष**—आन्दोलन के कार्यक्रम का रचनात्मक पक्ष निम्नानुसार था :

1. राष्ट्रीय स्कूलों और कॉलेजों की स्थापना करना।
2. व्यापक पैमाने पर स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार करना।
3. सरकारी न्यायालयों के स्थान पर गैर-सरकारी पंचायती न्यायालयों की स्थापना।
4. घर-घर में चरखे, हथकरघा और बुनाई का प्रचार करना।
5. अस्पृश्यता निवारण हेतु प्रचार करना।
6. हिन्दू-मुस्लिम एकता को सुदृढ़ करना।

असहयोग आन्दोलन का प्रारम्भ—प्रगति और अन्त
(BEGINNING, PROGRESS AND END OF NON-COOPERATION MOVEMENT)

महात्मा गाँधी ने सर्वप्रथम अपनी उपाधि **"केसर-ए-हिन्द"** सरकार को वापस कर असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात किया। उन्होंने वायसराय को यह भी लिखा कि **"मेरे हृदय में ऐसी सरकार के लिये न कोई सम्मान और प्रेम नहीं रह सकता, जो अपनी अनैतिकता की रक्षा के लिये एक के बाद एक गलत कार्य करती चली**

आ रही है। मैंने इसीलिए असहयोग का सुझाव रखा है जिससे वे लोग ऐसा करना चाहें, सरकार से सम्बन्ध विच्छेद कर सकें और यदि वह अहिंसात्मक बना रहा तो सरकार को मार्ग बदलना होगा तथा अपनी भूलों को सुधारना होगा।" गाँधीजी द्वारा पद त्याग कर देने के पश्चात् सेठ जमनादास बजाज ने अपनी रायबहादुर उपाधि तथा मजिस्ट्रेट के पद से त्याग-पत्र दे दिया इसी क्रम में सी. आर. दास, मोतीलाल नेहरू, राजेन्द्र प्रसाद, पंडित जवाहरलाल नेहरू, लाला लाजपतराय, चितरंजन दास, आसफअली आदि ने वकालत करना छोड़ दिया तथा सरकारी न्यायालयों का बहिष्कार किया। स्थान-स्थान पर विद्यार्थियों ने सरकारी शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार करके आन्दोलन के नेताओं द्वारा स्थापित किये गये बिहार विद्यापीठ, पटना; गुजरात, विद्यापीठ, अहमदाबाद; तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूना; मुस्लिम विद्यापीठ, अलीगढ़ तथा हिन्दू विद्यापीठ आदि राष्ट्रीय विद्यालयों में प्रवेश लिया।

विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया गया। इस कार्य में जनता का अपूर्व उत्साह दिखायी दिया। स्थान-स्थान पर विदेशी वस्त्रों की होली जलायी गई। विदेशी वस्त्रों और शराब की दुकानों पर धरने दिये गये। परिणामस्वरूप स्वदेशी को लोकप्रयिता प्राप्त हुई। लोग खादी के वस्त्र पहनने लगे जिससे भारतीय हथकरघा और बुनाई उद्योग को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। काँग्रेस ने 30 लाख स्वयंसेवकों की सूची तैयार की और 20 हजार चरखे तैयार कराये। काँग्रेस महासमिति ने मार्च, 1921 की वैजवाड़ा बैठक में एक करोड़ रुपया एकत्रित करने का निश्चय किया। इस कोष में तेजी से राशि एकत्रित होने लगी। इस आन्दोलन ने अस्पृश्यता और हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये भी महत्वपूर्ण कार्य किया। यही नहीं, काँग्रेस के आह्वान पर भारतीय जनता ने विधानमण्डलों के निर्वाचनों का भी बहिष्कार किया। अनेक केन्द्रों पर मतदाता वोट डालने ही नहीं गये। इस प्रकार गाँधीजी द्वारा जनता से किये गये असहयोग के आह्वान का जनता ने भरपूर प्रत्युत्तर दिया और अदम्य साहस का परिचय देते हुए भारतीय जनता प्रत्येक प्रकार के त्याग और बलिदान के लिये आगे आयी।

आन्दोलन का शासन द्वारा दमन और प्रिंस ऑफ वेल्स का बहिष्कार
(SUPPRESSION OF MOVEMENT BY GOVERNMENT AND BOYCOTT OF PRINCE OF WALES)

असहयोग आन्दोलन की प्रगति और लोकप्रियता के परिणामस्वरूप जनता के उत्साह और देश के कोने-कोने से उठने वाले स्वराज्य के तूफान को देखकर शासन हैरान और परेशान हो गया। वह यह नहीं समझ पा रहा था कि इस विषम परिस्थिति का सामना कैसे किया जाए ? आन्दोलन के नेताओं की गिरफ्तारी से जनता में आग भड़क सकती थी। अतः आन्दोलन की लोकप्रियता और प्रगति को देखकर सरकार ने क्रूर दमन चलाने का निर्णय लिया। सरकार ने **'राजद्रोह सभा अधिनियम'** (Seditions Meeting Act) पारित करके उसका खुलकर प्रयोग किया। इस अधिनियम द्वारा सार्वजनिक सभाओं को जबरदस्ती विसर्जित करा दिया जाता था। इतना ही नहीं, आन्दोलन के नेताओं के आगमन को प्रतिबन्धित कर दिया गया। अनेक नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। आन्दोलन से सम्बद्ध अन्य व्यक्तियों को भी गिरफ्तार करके जेल में ठूँस दिया गया। लगभग 60 हजार व्यक्तियों की गिरफ्तारी के बाद भी भारतीय जनता के उत्साह में कमी नहीं आ रही थी। इतना ही नहीं, कहीं-कहीं सरकार द्वारा अनावश्यक रूप से शक्ति प्रयोग करके अनेक व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया गया था। उदाहरणार्थ ननकाना साहिब गुरुद्वारे में 4 मार्च, 1921 को सिख लोग शान्तिपूर्वक एकत्रित थे। पुलिस ने अकारण ही उन पर धावा बोल कर अनेकों गोलियाँ चलायीं जिससे 70 व्यक्ति मारे गये। इसी समय 20 अगस्त, 1921 को अलीबन्धुओं द्वारा दिये भाषण से हिंसा को प्रोत्साहन मिला। लेकिन अलीबन्धुओं द्वारा हिंसा का समर्थन न करने सम्बन्धी आश्वासन दिये जाने के बाद भी सरकार ने सितम्बर, 1921 में उन्हें गिरफ्तार कर लिया। नवम्बर 1921 में प्रिंस ऑफ वेल्स भारत की यात्रा पर आने वाले थे। इसलिये गवर्नर लार्ड रीडिंग यह चाहते थे कि प्रिंस ऑफ वेल्स के भारत आगमन पर भारत में शान्ति बनी रहे और भारतीय जनता उनका स्वागत करे। परन्तु काँग्रेस महासमिति अलीबन्धुओं की गिरफ्तारी के विरोध में प्रिंस ऑफ वेल्स के भारत आगमन के दिन सम्पूर्ण देश में हड़ताल करने का निश्चय कर चुकी थी। ऐसी स्थिति में लार्ड रीडिंग ने पंडित मदन मोहन मालवीय की मध्यस्थता में गाँधीजी से बातचीत कर समझौता करने के लिए प्रस्ताव रखा। परन्तु गाँधी जी ने प्रस्तावों को ठुकराते हुए कहा कि जब तक अलीबन्धुओं को मुक्त नहीं किया जाता तब तक शासन से वार्ता का प्रश्न ही नहीं उठता। परन्तु शासन इसके लिए तैयार नहीं था। उसने अपना दमन-चक्र और तेज कर दिया। 17 नवम्बर, 1921 को जब प्रिंस ऑफ वेल्स भारत आये तो

काँग्रेस ने हड़ताल और प्रदर्शनों से उनका स्वागत किया। **रजनी पामदत्त** के अनुसार, "**जनता की नफरत का ऐसा व्यापक और सफल प्रदर्शन पहले कभी नहीं हुआ था।**" ऐसी स्थिति में सरकार का दमन चक्र और अधिक तेज हो गया। अतः जनता के अभूतपूर्व उत्साह और शासन के दमन-चक्र की तीव्रता को देखते हुए आन्दोलन के अन्तर्गत कोई नवीन कदम उठाना आवश्यक हो गया था। फलतः फरवरी, 1922 में गाँधीजी ने गवर्नर जनरल को एक पत्र द्वारा चेतावनी दी कि यदि 7 दिन के अन्दर शासन ने अपनी दमनात्मक नीति में परिवर्तन नहीं किया तो काँग्रेस द्वारा बारदोली और गुण्टूर में सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया जायेगा जिसमें 'कर न दो' कार्यक्रम भी सम्मिलित रहेगा।

चौरी-चौरा काण्ड और आन्दोलन का अन्त
(CHAURI-CHAURA INCIDENT AND END OF MOVEMENT)

अभी गाँधीजी द्वारा गवर्नर जनरल को पत्र लिखे मात्र एक सप्ताह (अर्थात् सात दिन) ही हुआ था कि अचानक एक ऐसी घटना घटित हुई कि सम्पूर्ण दृश्य ही परिवर्तित हो गया। वह घटना थी 5 फरवरी, 1922 को उत्तर प्रदेश में गोरखपुर जिले के चौरी-चौरा नामक स्थान पर शासन के अत्याचारों से क्षुब्ध होकर लगभग 30 हजार लोगों की भीड़ ने प्रदर्शन किया। पुलिस ने बल-प्रयोग करके इस प्रदर्शन को रोकने का प्रयास किया इससे जनता उत्तेजित होकर हिंसा पर उतर आयी और उसने एक पुलिस चौकी में आग लगा दी इस अग्निकाण्ड में एक थानेदार और 21 सिपाही जलकर मर गये। इस घटना से अहिंसा के पुजारी महात्मा गाँधी को भारी दुःख हुआ। वे इस घटना को सहन नहीं कर सके। उन्होंने 12 फरवरी, 1922 को काँग्रेस कार्य समिति की बैठक आयोजित करके अनेक नेताओं के इन्कार करने के बाद भी असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया गया। देशबन्धु चितरंजनदास, मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपत राय और सुभाषचन्द बोस तो आन्दोलन स्थगित करने के बिल्कुल पक्ष में नहीं थे। इस सम्बन्ध में **सुभाष चन्द्र बोस** ने तो यहाँ तक कहा कि "**ठीक उस समय जब जनता का उत्साह चरमोत्कर्ष पर था, उसे वापस लौटने का आदेश दिया जाना राष्ट्रीय दुर्भाग्य ही था।**"[1] इसके अतिरिक्त मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपत राय ने जेल से ही लम्बे पत्र लिखकर गाँधी को किसी एक स्थान पर पाप के लिये सम्पूर्ण देश को दण्ड देने के लिये आड़े हाथों लिया।[2] इस प्रकार अन्य अनेक नेताओं द्वारा आन्दोलन के अचानक स्थगन का तीव्र विरोध किया गया। इस आन्दोलन स्थगन का हिन्दू-मुस्लिम एकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। अलीबन्धुओं और दूसरे मुस्लिम नेताओं को प्रारम्भ से ही गाँधीजी के अहिंसक असहयोग आन्दोलन में विश्वास नहीं था, इसलिए आन्दोलन स्थगित किये जाने के बाद वे काँग्रेस से विमुख होने लगे। इतना ही नहीं, आन्दोलन स्थगन की प्रतिक्रियास्वरूप देश में गाँधीजी का जो विरोध हुआ उससे उनकी लोकप्रियता में भी कमी आई जिसका लाभ उठाते हुए 10 मार्च, 1922 को सरकार ने गाँधीजी को गिरफ्तार कर लिया और उन पर राजद्रोह के आरोप में मुकदमा चलाया। उन्हें 6 वर्ष के कारावास का दण्ड दिया गया। परन्तु उनकी बीमारी के कारण यह अवधि पूर्ण होने से पूर्व ही 5 फरवरी, 1924 को उन्हें रिहा कर दिया गया।

असयोग आन्दोलन की दुर्बलताएँ या कमियाँ
(SHORTCOMINGS OF NON-COOPERATION MOVEMENT)

असहयोग आन्दोलन की प्रमुख दुर्बलताएँ अग्रलिखित थीं :

(1) **गाँधी का ही एकमात्र प्रभाव**—असहयोग आन्दोलन की विफलता का मूल कारण यह था कि इस आन्दोलन का प्रस्ताव पारित होने का आधार काँग्रेस के नेताओं की सर्वसम्मति न होकर केवल गाँधीजी का प्रभाव मात्र था प्रस्ताव पर मतभेद के फलस्वरूप काँग्रेस के अनेक नेता अन्त तक इस आन्दोलन से अलग ही रहे और विपिनचन्द पाल, जिन्ना और श्रीमती एनीबेसेण्ट जैसे नेता तो काँग्रेस से अलग ही हो गये।

(2) **धर्म को राजनीति में सम्मिलित करना**—इस आन्दोलन की दुर्बलता का एक प्रमुख कारण खिलाफत जैसे धार्मिक प्रश्न को राष्ट्रीय आन्दोलन जैसे राजनीतिक प्रश्न के साथ सम्बद्ध करना गाँधीजी की सबसे बड़ी भूल थी हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये गाँधीजी द्वारा किये गये इस प्रयास के कारण ही भारतीय राजनीति में धर्म का ही नहीं अपितु धर्मान्धता का प्रवेश हुआ जिसका दुष्परिणाम हिन्दू-मुस्लिम तनाव के रूप में सामने

1 Subhash Chandra Bose : *Indian Struggle*, p. 208.
2 Dr. Pattabhi : *History of the Congress*, pp. 399-400.

आया। इसीलिए मजूमदार ने लिखा है कि "**गाँधीजी द्वारा हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये चुना गया आधार बहुत कमजोर था।**"

(3) **त्याग और अनुशासन का अभाव**—असहयोग आन्दोलन के लिये वाँछित त्याग और अनुशासन का सर्वथा अभाव रहा। **पंडित जवाहरलाल नेहरू** ने कहा कि आन्दोलन न केवल चौरी-चौरा की घटना के कारण स्थगित किया गया वरन् वास्तविकता यह थी कि बाहर से शक्तिशाली दिखने वाला आन्दोलन छिन्न-भिन्न हो रहा था।

(4) **नैतिक विरोध**—असहयोग आन्दोलन ब्रिटिश सरकार की शक्ति के विरुद्ध एक प्रकार का नैतिक विरोध था, जबकि ब्रिटिश सरकार का नैतिकता से दूर का भी सम्बन्ध नहीं था। इसीलिये इस आन्दोलन की सफलता यदि असम्भव नहीं तो संदिग्ध अवश्य थी। परन्तु इस आन्दोलन से भारतीय जनता को जो आशाएँ थीं उनके पूर्ण हुए बिना ही आन्दोलन स्थगित कर दिये जाने से भारतीय जनता पर मनोवैज्ञानिक रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ा इसीलिए **सुभाष चन्द्र बोस** ने ठीक ही लिखा है कि "**एक वर्ष में स्वराज्य प्राप्त करने का वचन न केवल अविवेकपूर्ण था, वरन् बालक सदृश था।**"[1] इसके अतिरिक्त जनता द्वारा जो भी छिट-पुट हिंसक घटनाएँ की गयी थीं वे तो सरकार द्वारा की जा रही दमनात्मक कार्यवाही की प्रतिक्रिया मात्र थीं। अतः जनता की मनोवृत्ति को ध्यान में रखकर उन घटनाओं को स्वाभाविक मानते हुए गाँधीजी को उनके लिये सरकार को उत्तरदायी ठहराना चाहिए था।

(5) **नकारात्मक पक्ष असफल**—असहयोग आन्दोलन की एक दुर्बलता यह भी थी कि इस आन्दोलन के कार्यक्रम का नकारात्मक पक्ष भी अधिक सफल नहीं रहा क्योंकि पुनर्गठित विधानमण्डलों के 784 स्थानों के लिये लगभग 2,000 प्रत्याशियों ने निर्वाचन में भाग लिया। मात्र 6 स्थान ही ऐसे थे जहाँ प्रत्याशियों के अभाव में निर्वाचन नहीं हो सका। अनेक अवसरवादी निर्वाचित होकर विधानमण्डलों में पहुँच गये। इतना ही नहीं, सरकारी संस्थाओं में कार्य होता रहा।

(6) **अनौचित्यपूर्ण**—काँग्रेस के अन्य नेताओं से विचार विमर्श किये बिना अचानक ही गाँधीजी द्वारा आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया जाना उचित नहीं था। अपनी चरम सीमा पर पहुँचा हुआ यह आन्दोलन यदि कुछ समय तक और चलाया जाता तो सुधारों की एक नवीन और रचनात्मक योजना प्रस्तुत करने के लिये सरकार को बाध्य होना ही पड़ता।

असहयोग आन्दोलन का महत्त्व
(IMPORTANCE OF NON-COOPERATION MOVEMENT)

उपर्युक्त दुर्बलताओं के होते हुए भी असहयोग आन्दोलन राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में महत्वहीन नहीं था। इस आन्दोलन के महत्व को निम्नांकित बिन्दु स्पष्ट करते हैं :

(1) **जन-आन्दोलन का रूप प्रदान करना**—असहयोग आन्दोलन को राष्ट्रीय आन्दोलन में अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। इस आन्दोलन के कारण ही राष्ट्रीय आन्दोलन को एक जन-आन्दोलन का रूप प्राप्त हुआ। इसने जनसाधारण में अपूर्व त्याग, साहस और राष्ट्रीय भावना का संचार किया। अब तक देश-भक्ति कुछ गिने-चुने व्यक्तियों तक सीमित समझी जाती थी। गाँधीजी और असहयोग आन्दोलन के प्रभाव से यह सर्वसाधारण की सम्पत्ति बन गई। यह आन्दोलन पहला जन-आन्दोलन था जिसने भारतीय जनता को अपने पैरों पर खड़ा होना सिखाया। गाँधीजी और काँग्रेस की यह एक आश्चर्यजनक सफलता थी।

(2) **निर्भीकता की भावना का विकास**—असहयोग आन्दोलन ने जनसाधारण में अदम्य साहस निर्भीकता की भावना उत्पन्न की। सरकार का विरोध करने, जेल जाने में भारतीय जनता प्रारम्भ से घबराती थी। अब सरकार और आलोचना करने के साथ-साथ राष्ट्रीय संघर्ष के सभी क्षेत्रों में निर्भीक होकर अपना सहयोग करने लगी और बच्चे-बच्चे के मुँह से स्वराज्य शब्द सुनायी देने लगा।

(3) **प्रभावपूर्ण आन्दोलन**—असहयोग आन्दोलन के चलते रहने तक आन्दोलन से भयभीत सरकार उदारवादियों और जनता का पूर्ण सहयोग प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रही। इस हेतु सन् 1919 के सुधारों को उदारतापूर्वक कार्यान्वित किया गया।

---

1 Subhash Chandra Bose : *Indian Struggle*, p. 208.

(4) **रचनात्मक पक्ष सफल**—असहयोग आन्दोलन के कार्यक्रम का रचनात्मक पक्ष भी महत्वपूर्ण रहा। इस आन्दोलन द्वारा गाँधीजी ने जनता की भावना को उत्तेजित करने के लिये स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार पर बल दिया। खादी पवित्रता और राष्ट्रीयता का प्रतीक बन गयी। घर-घर में चरखे और हथकरघे का प्रचलन हुआ और खादी को प्रोत्साहन मिला। इस आन्दोलन की सफलताओं को स्वीकार करते हुए **सुभाष चन्द्र बोस** लिखते हैं कि "सन् 1921 के वर्ष ने निःसन्देह एक सुव्यवस्थित दलीय संगठन प्रदान किया। इसके पूर्व काँग्रेस एक वैधानिक दल और मुख्यतः बात करने वाली संस्था थी। गाँधीजी ने इसे नया विधान दिया और देशव्यापी बनाया। उन्होंने इसे एक क्रान्तिकारी संगठन के रूप में भी परिवर्तित कर दिया। देश के एक कौने से दूसरे कौने तक एक जैसे नारे गूँजते थे और एक जैसी नीति व एक ही विचारधारा सर्वत्र दिखाई देती थी। अंग्रेजी भाषा का महत्व जाता रहा और काँग्रेस ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया। खादी समस्त काँग्रेसजनों की पोशाक बन गई।"[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि असहयोग आन्दोलन का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में विशेष स्थान है। असहयोग आन्दोलन के कारण स्वराज्य की मंजिल थोड़ा निकट आ गई। काँग्रेस व जनता को अपनी शक्ति का आभास हो गया। आगे चलकर ऐसे ही आन्दोलनों द्वारा भारतीयों ने स्वतन्त्रता प्राप्त की।